तृतीय अध्याय :

"आचार्य चतुरसेन शास्त्री की कहानियों की प्रासंगिकता"

सांस्कृतिक पुनरुत्थान

नैतिक मूल्य

आदर्शवाद

अवसरवादिता

दुरूह सामाजिक व्यवस्था

व्यक्तिगत जटिलता

सूक्ष्म संवेदनाएं

आचार्य चतुरसेन शास्त्री की कहानियों की प्रासंगिकता के अन्तर्गत सर्वप्रथम हमें यह जानना होगा कि प्रासंगिकता किसे कहते हैं? प्रासंगिकता का क्या अर्थ है? प्रासंगिकता का अर्थ यह होता है कि कोई सूचना, कोई क्रिया अथवा चीज, किसी मामले, मुद्दे या विषय से कितना सम्बद्ध है| आचार्य जी की कहानियों की प्रासंगिकता को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझ सकते हैं|

सांस्कृतिक पुनरुत्थान-

जैसा सर्वविदित है कि संस्कृति मनुष्य के अन्तरंग को संस्कारित करती है तथा सभ्यता मनुष्य के बहिरंग को सम्मिलित स्वरूप द्वारा प्रगतिशील जीवन का पूर्णतः एवं स्वस्थ स्वरूप बनाता है| आचार्य जी की कहानियों में सांस्कृतिक पुनरुत्थान पर विशेष बल दिया गया है| कहानियों के माध्यम से आचार्य जी ने पाठकों को यह संदेश देने का प्रयास किया है कि व्यक्ति का चरित्र एवं व्यवहार कैसा होना चाहिए| यह इस पर निर्धारित करता है कि वे किस परिवेश या वातावरण में सांस ले रहे हैं| जैसा हमारा पर्यावरण होगा उसी के अनुरूप हम ढलने का भी प्रयत्न करते जाते हैं| सभ्यताओं के उद्भव तथा उसके पराभव की घटनाओं में यदि वस्तुतः देखा जाए तो सांस्कृतिक मूल्यों की ही भूमिका दिखाई पड़ती है, क्योंकि सभ्यताओं का कोई स्वतंत्र रूप से अस्तित्व नहीं होता| वे संस्कृति के ही अनुसार बनती, ढलती तथा बदलती रहती हैं| इस

प्रकार से यह स्पष्ट हो जाता है कि सांस्कृतिक मूल्य ही हमारे समाज के मेरुदण्ड होते हैं, जो समाज को गढ़ने अथवा पराभव के गर्त में ढकेलने के मुख्य कारक होते हैं| शास्त्री जी की कहानी 'सुख दान' में जब सुषमा अपने जीजा से कहती है कि "देख रही हूँ! पर हम एक तो हैं ही| आज से नहीं तभी से जब मैं इतनी सी थी! मेरी सारी जमा-पूंजी तो आप ही की है| आपने मुझे अक्षराभ्यास कराया और कालेज की डिग्री दिलाई| आपके विचार, आपकी प्रतिभा, आपके आदर्श सभी तो मेरी नस-नस में हैं| आप ही तो मुझे अपने मस्तिष्क की प्रतिलिपि कहा करते थे|"[1]

तभी तो उसके संस्कार, उसकी संस्कृति, उसके आदर्श प्रतिलक्षित होते हैं, जो समाज को एक नयी दिशा प्रदान करते हैं| 'विश्वास पर विश्वास' कहानी में मैना भी अपने राक्षस पति को चाहकर भी छोड़कर नहीं जाती, क्योंकि उसके माता-पिता के संस्कार उसमें बचपन से ही भरे पड़े थे| जो जिस माहौल में रहता है, उस पर्यावरण का प्रभाव उस पर आवश्यक रूप से पड़ जाता है| मैना का पति नन्दू उसे आये दिन शराब पीकर मारता-पीटता था, परन्तु अपने संस्कारो में बंधी मैना पति ही परमेश्वर होता है, यह सोंचकर उसके साथ किसी तरह अपना जीवन व्यतीत करती रहती है|

नैतिक मूल्य-

हमारे जीवन में नैतिक मूल्यों का अत्यंत ही महत्व है| नैतिक मूल्य हमें व्यवहार तथा सामाजिक जीवन जीने के तौर-तरीके समझाते हैं, जिससे हमें देश के प्रति एक महान नागरिक बनने की प्रेरणा मिलती है| ईमानदारी, सच्चाई, दयालुता, प्रेम, मैत्री इत्यादि को नैतिक मूल्यों के अंतर्गत ही रखा गया है| सच्चाई को स्वतः साध्य मूल्य कहा जाता है| शास्त्रीजी की कहानियों में नैतिक मूल्यों की छाप स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है| 'बात का धनी' नामक कहानी में रघुपति सिंह ने ईमानदारी की एक मिसाल पेश की| जब अपनी पत्नी और बीमार पुत्र से मिलने के लिए रघुपति सिंह घर जाता है तो उसके घर पर कड़ा पहरा होता है| एक सिपाही उसे घर के अन्दर जाने की अनुमति नहीं देता है तो वह सिपाही से कहता है कि "तनिक ठहरो, मेरा बच्चा मर रहा है, मैं जरा उसे देख आऊँ और पत्नी को तसल्ली दे आऊँ, तब मुझे गिरफ्तार कर लेना|"[2]

इसके पश्चात वह अपनी पत्नी तथा मृत्यु-शय्या पर पड़े पुत्र की हालत को वह देखकर भी अपनी बात की कीमत करते हुए उस सिपाही के समक्ष आत्मसमर्पण कर देता है| रघुपति सिंह चाहता तो भाग सकता था और अपनी पत्नी तथा पुत्र को मरने से रोक सकता था, परन्तु वह ईमानदारी की प्रतिमूर्ति था| वह अपनी कही हुई बात को पूर्ण करने के लिये वापस आकर स्वयं सिपाही के सामने प्रस्तुत हो जाता है| ऐसे ही कई वीर, साहसी तथा सहृदय पात्रों ने इन कहानियों में अपने सत्कर्मों

तथा साहस के बल पर नैतिक मूल्यों को एक आदर्श के रूप में स्थापित किया है| 'संतोषी भोला' नामक कहानी में भोला एक बेहद संतोष करने वाला व्यक्ति था, जिसे तीन वर्ष तक मजदूरी करने के उपरान्त उसका मालिक उसे सिर्फ तीन पैसे ही मजदूरी देता है और कहता है कि तुम्हारी कमाई के सारे पैसे तो तुम्हारे रहने, खाने और पीने में खर्च हो गए| इस पर भी भोला बड़े प्यार से उन तीन पैसों को रख लेता है तथा अपने घर के लिए निकल पड़ता है| मार्ग में उसे एक महात्मा जी मिले, जो भोला से कुछ पैसे मांगते हैं| भोला उन्हें वे तीन पैसे भी दे देता है| महात्मा खुश होकर भोला को तीन वर और एक डंडा देते हुए कहते हैं कि इस डंडे से तुम जो भी मांगोगे, वह तुम्हें तुरंत मिल जाएगा| वरदान पाकर भोला बहुत प्रसन्न हुआ| वह हंसी-खुशी के साथ अपने घर पहुँचता है,क्योंकि अब उसकी हर मनोकामना पूर्ण हो चुकी थी| भोला को संतोष और ईमानदारी के कारण ही सब कुछ प्राप्त होता है| इसीलिए कहा जाता है कि संतोष का फल बहुत मीठा होता है| हमारे जीवन में नैतिक मूल्यों का विशेष महत्व है| हम नैतिक मूल्यों को अपने जीवन में उतारकर अपना तथा अपने परिवार और समाज का सर्वांगीण विकास कर सकते हैं|

आदर्शवाद-

आचार्य जी ने यद्यपि मानवीय दुर्बलताओं को सहानुभूति की दृष्टि से देखा है लेकिन वे एक आदर्श समाज की स्थापना के अभिलाषी थे| वे

ऐसे समाज की नींव रखना चाहते थे, जिसमें क्रोध, घृणा, पाप, चोरी, ईर्ष्या, द्वेष, कुत्सा, शोषण, उत्पीड़न, अमानवीयता तथा बैर इत्यादि न हो| सब लोग मिल-जुलकर भाई-बहन तथा माता-पिता की तरह आपस में रहकर जीवन व्यतीत करें, क्योंकि युद्ध मानव की प्रवृत्ति नहीं, पशु की प्रकृति है| इसी विचार के कारण उनकी कुछ कहानियां आदर्शवादी भी हैं| 'मास्टर साहब' नामक कहानी में मास्टर साहब मात्र 40 रु. की नौकरी करते थे, जिससे उनका तथा उनकी पत्नी भामा एवं पुत्री प्रभा का खर्च किसी तरह चल रहा था| बढ़ती मंहगाई की मार के आगे वे अपने घर का खर्च ठीक से वहन नहीं कर पा रहे थे| मास्टर साहब की पत्नी बड़ी लालची तथा बड़े शौक वाली थी| वह आये दिन रुपये के लिए पति से लड़ती तथा उन्हें सलाह देती कि पड़ोस वाले दाताराम तुम्हारे साथ नौकरी करते हुए रेल में बाबू हो गए और तुम अभी तक 40 रु. की नौकरी ही कर रहे हो| तुम्हारे साथी लोग अपनी तनख्वाह के अलावा भी इधर-उधर करके घर में पैसे लाते हैं| मास्टर साहब ठहरे एक आदर्शवादी व्यक्ति वे अपनी ईतानदारी, सत्यता, धर्म के अनुसार ही कार्य करना जानते थे, भले ही घर का खर्च पूरा हो या न हो| पत्नी भामा के बार-बार कहने पर कि तुम भी अपने दोस्तों की तरह खूब सारा पैसा कमाकर क्यों नहीं लाते हो? तो इस बात पर मास्टर साहब उसे जवाब देते हुए कहते हैं कि "वे सब तो गोदाम से माल चुराकर लाते हैं प्रभा की मां! मुझसे तो चोरी हो नहीं सकती| तनख्वाह जो मिलती है, उसी में गुजर-बसर करना होगा|

करना होगा, तुमने तो कह दिया पर इस मंहगाई के ज़माने में कैसे? इससे भी कम में गुजर करते हैं लोग, प्रभा की माँ!"[3]

मास्टर साहब अपने ईमान, धर्म, चरित्र से कभी डिगे नहीं| वे रूखी- सूखी खाकर सो जाते थे और सुबह अपने स्कूल में पहुँच जाते थे| एक दिन उनकी पत्नी उन्हें छोड़कर चली जाती है| उसके जाने के उपरान्त वे एक पिता के साथ-साथ, एक माता का भी फर्ज निभाते हुए पुत्री प्रभा की देख-रेख भी करते हैं, लेकिन कभी भी वे अपने उसूलों से डिगे नहीं| आदर्शवाद, पाश्चात्य दर्शन की वह प्राचीन धारा है जो यह मानती है कि हमारा ब्रह्माण्ड ईश्वर द्वारा निर्मित है तथा इसका यह भी मानना है कि आध्यात्मिक जगत इस भौतिक जगत की अपेक्षा श्रेष्ठ है एवं अन्तिम सत्य ईश्वर है। आत्मा उस ईश्वर का अंश है जो यह निश्चित करती है कि मानव जीवन का अन्तिम उद्देश्य आत्मा-परमात्मा के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान को प्राप्त करना है| जिसे शास्वत मूल्यों व नैतिक नियमों के आधार पर प्राप्त किया जा सकता है| शास्वत मूल्यों से तात्पर्य यह है कि जो कभी खत्म न हो, जिसे कभी कोई मिटा न सके|

अवसरवादिता-

आचार्य चतुरसेन शास्त्री की कहानियों में हर वर्ग के पात्र दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि ये पात्र हर क्षेत्रों से लिए गए हैं| 'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी' नामक कहानी में अवसरवादी पात्र के रूप में शाहजहाँ की

बेगम सलीमा की बाँदी उभर कर सामने आती है| शाहजहाँ जब कुछ दिनों के लिए शिकार पर निकल जाते हैं तो वह बांदी जो कि एक स्त्री के वेश में छिपा हुआ मर्द होता है, अवसर पाकर वह सलीमा के होठों को चूम लेता है "बंशी रखकर साकी क्षण-भर बेगम के पास आकर खड़ी हुई| उसका शरीर कांपा, आंखें जलने लगी, कंठ सूख गया| वह घुटने के बल बैठकर बहुत धीरे-धीरे अपने आँचल से बेगम के मुख का पसीना पोंछने लगी| इसके बाद उसने झुककर बेगम का मुख चूम लिया|"[4]

अवसरवादी पात्रों के कारण कहानियों में एक प्रकार की ललक उत्पन्न होती है, जिससे पाठक कभी बोरियत महसूस नहीं करता| 'मूल्य' नामक कहानी में नवीन अमला के पिताजी को पाँच लाख रुपए कर्ज के रूप में तो दे देता है परन्तु अमला के पिता जी उस मूल्य को चुकता नहीं कर पाते हैं बल्कि दिनों-दिन उनकी हालत बदतर होती जा रही थी| इधर अमला के शादी की भी चिंता उन्हें बराबर सता रही थी मगर वे यह निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि अब क्या किया जाए| तब नवीन अवसरवादिता का लाभ उठाते हुए अमला के पिता से वह रुपये के बदले अमला का हाथ माँगता है| मजबूर पिता अपनी इज्जत आबरू बचाने के लिए अमला के आगे गिड़गिड़ाने लगा| अमला अपने पिताजी को इस मुसीबत से बचाने हेतु न चाहते हुए भी नवीन से शादी के लिये हाँ कर देती है। शुभ घड़ी में दोनों का विवाह हो जाता है, परन्तु वह नवीन से प्रेम नहीं करती बल्कि उससे कहती है कि "आपका कर्जा एक आदमी पर

था, वह उसे चुका सकता था, उसकी लड़की आपको पंसद आ गई, उसके बदले आपने कर्जे की बेबाकी कर दी, यह क्या बढ़िया सौदा नहीं हुआ|"[5]

इस प्रकार से अमला अपने पति नवीन से कहती है कि मैं आपके बनिएपन को घृणापूर्वक देखती हूँ| आपको यह पता होना चाहिए कि स्त्रियों को किसी भी कीमत पर खरीदा नहीं जा सकता बल्कि उन्हें जीता जाता है| आपने तो मुझे सिर्फ मोल खरीदा है लेकिन सिर्फ मेरे शरीर को, न कि मेरी आत्मा को| मैं आपकी पत्नी जरूर हूँ लेकिन जब तक मैं पिताजी के सर पर लदा हुआ कर्ज उतार नहीं देती, तब तक मैं सुकून की सांस नहीं ले सकती|

दुरूह सामाजिक व्यवस्था-

आचार्य जी लिखते हैं कि महात्मा बुद्ध के समय तक भारतीय समाज अव्यवस्थित हो चला था| उनका मानना है कि उस समय ब्राह्मणों और क्षत्रियों ने आपस में संगठित होकर संकरो और शूद्रों को अलग रखा था| समाज में इन शूद्रों और संकरो के लिये उचित स्थान न था| अधिकतर क्षत्रिय जन ही राजा थे और मंत्री ब्राह्मण, लेकिन इन क्षत्रियों और ब्राह्मणों के विरूद्ध धीरे-धीरे विद्रोह खड़ा होने लगा| लोगों ने प्रजातंत्रीय भावना उत्पन्न करना शुरू कर दिया ताकि समाज में प्रचलित ऊँच-नीच का भेदभाव मिट सके| गौतम बुद्ध स्वयं तथा अपने शिष्यों के सहयोग से ब्राह्मण धर्म में फैली हुई अव्यवस्था को समाप्त

करने हेतु तन-मन से जुट गए "तत्कालीन समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चातुर्वर्ण तो थे ही, अन्य अनेक संकर और मिश्रित जातियां भी थीं| क्रीत दास थे, अनार्य थे, असुर थे, द्रविड़ थे|"[6]

विभिन्न प्रकार की जातियां उस समय समाज में प्रचलित थीं। गौतम बुद्ध ने अपने उपदेशों के द्वारा जन-जन में राजतंत्र के स्थान पर प्रजातंत्रीय शासन की भावना को भर दिया| आचार्य जी की कहानी 'अम्बपालिका' में भी हमें दुरूह सामाजिक व्यवस्था देखने को मिलती है| अम्बपालिका लिच्छिवि गणतंत्र में पली बढ़ी थी| उसको पालने वाला वृद्ध महानामन लिच्छिवि था| उस समय पूरे लिच्छिवि गणतंत्र में यह कानून था कि राज्य की जो कन्या सबसे खूबसूरत व आकर्षक होती थी, उसे एक पुरुष की न होकर बल्कि राज्य के मनोरंजन हेतु 'नगरवधू' बना दिया जाता था| फलस्वरूप उसे सारी उम्र यूँ ही जिंदगी गुजारनी पड़ती थी| महानामन उस अम्बपालिका को राजमहल से दूर जंगल में बने अपने टूटे-फूटे घर में पाल- पोस बड़ा करता है| अब अम्बपालिका की उम्र 11 वर्ष की हो गयी थी| उसकी पत्नी का स्वर्गवास 8 वर्ष पूर्व ही हो गया था| उस सुन्दर बालिका को लेकर वह राजमहल में भी काम की तलाश में नहीं जा सकता था, क्योंकि वहाँ जाने से वह डरता था कि कहीं उसकी बेटी पर किसी की बुरी नजर न पड़ जाए "उसकी चिंता थी बालिका का अप्रितम सौन्दर्य| सहस्त्राधिक बालिकाएँ भी क्या उस पारिजात-कुसुम-तुल्य कुन्द-कलिका के समान थीं? किस पुष्प में उतनी गन्ध, कोमलता

और सौन्दर्य था? उसे भय था कि राजनियमानुसार वह विवाह से वंचित करके कहीं नगर-वेश्या न बना दी जाए, क्योंकि लिच्छिवि गणतंत्र में यह कानून था कि राज्य की जो कन्या अत्यधिक सुन्दर होती थी, उसे किसी एक पुरुष की पत्नी न होने दिया जाकर नागरिकों के लिये सुरक्षित रखा जाया करता था|"[7]

व्यक्तिगत जाटिलता-

शास्त्री जी ने अपनी कहानियों में अधिकतर ऐसे पात्रों या ऐसे विषयों को चुना है जो समाज तथा राष्ट्रहित में अपना सब कुछ अर्पण करने में जरा भी संकोच नहीं करते| प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से रूप, गुण, प्रवृत्तियों, आदतों आदि में अलग होता है| यही अन्तर उसे उस व्यक्ति से अलग करता है और यही उसकी वैयक्तिकता कहलाता है| सामान्य रूप से देखा जाए तो व्यक्ति के रूप, व्यवहार, सामाजिकता, आदर्श, चरित्र आदि ऐसे तत्व हैं जो उसे एक दूसरे से अलग करते हैं| यही अन्तर उसकी वैयक्तिकता होती है| शास्त्रीजी ने अपनी कहानी 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' में व्यक्तिगत जटिलता का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है| शाहजहाँ की बेगम सलीमा को जब बांदी (जो कि एक पुरुष होकर भी स्त्री के वेश में सलीमा के साथ रहता था) घर में अकेला पाती है तो वह उसके शरबत के गिलास में दवा मिलाकर पिला देती है| सलीमा बेसुध होकर जब जमीन पर गिर पड़ती है तब वह बांदी

अपने पुराने प्रेम भावना को चाहकर भी रोक नहीं पाती और उसके गुलाब जैसे खूबसूरत होठों को चूम लेती है| तभी वहां अचानक शाहजहाँ शिकार से वापस आ जाते हैं और उसे सलीमा को चूमते हुए देख लेते हैं| जब बादशाह को पता चला कि ये बांदी एक औरत नहीं बल्कि पुरुष है तो वे सलीमा को बिना कुछ कहे ही घर में कैद करवा देते हैं और उसका किसी से भी मिलना जुलना वर्जित कर देते हैं| इधर सलीमा को जब होश आता है तो वह समझ ही नहीं पाती कि उसके साथ ऐसा क्यों किया जा रहा है| वह बार-बार खत लिखकर किसी प्रकार से शाहजहाँ तक भिजवाती है परन्तु वे उसे क्रोध के कारण बिना पढ़े हुए ही कचरे के डिब्बे में फेंक देते हैं| सलीमा अपनी व्यक्तिगत जटिलताओं में कैद होकर यह समझ ही नहीं पाती कि बादशाह उसके साथ ऐसा क्यों कर रहे हैं| वह कई दिनों तक इसी ऊहा-पोह में समय व्यतीत करती रही कि एक न एक दिन शाहजहाँ उससे मिलने जरूर आएंगे परन्तु उसके सब्र की सीमा अब समाप्त हो गई थी| फिर एक दिन- "खत को इत्र से सुवासित करके ताजे फूलों के एक गुलदस्ते में इस तरह रख दिया कि जिससे किसी की उस पर फौरन ही नजर पड़ जाए| इसके बाद जवाहरात की पेटी से एक बहुमूल्य अंगूठी निकाली और कुछ देर तक आंखें गड़ा-गड़ा कर उसे देखती रही| फिर चाट गई|"[8]

कई दिनों तक अपनी व्यक्तिगत जाटिलताओं में उलझी रहने के पश्चात वह अपनी जान पर खेल गई| शाहजहाँ को जब यह पता चला तो

वे अपनी इस करनी के कारण पश्चाताप की अग्नि में जलने लगे| अपने आपको वे कोसने लगे कि मैं उस सलीमा को पहचान न सका| खिड़की खोलकर रात-दिन उसकी कब्र की ओर ही देखा करते थे और अपने दर्द को कम करने के लिये कहते थे कि 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी|'

सूक्ष्म संवेदनाएँ-

किसी के प्रति विशेष सहानुभूति को संवेदना कहा जाता है| मानक-हिन्दी के अनुसार- मन में होने वाले अनुभव या बोध, अनुभूति, किसी को कष्ट में देखकर स्वयं भी उसी के अनुरूप वेदना का अनुभव करना, उक्त प्रकार का दुःख या सहानुभूति प्रदर्शित करने की क्रिया को संवदेना कहते हैं| जब कोई व्यक्ति किसी के दुःख में दुःखी होता है तो उसे उस व्यक्ति के प्रति संवदेना है, ऐसा कहा जाता है| आचार्य जी की ऐसी अनेक कहानियां हैं जिनमें मानवीय संवदेना के साथ-साथ पशु-पक्षियों की भी संवेदना को उद्घाटित किया गया है| 'बुलबुल' नामक कहानी में राजा जब एक बुलबुल के गाने की तारीफ सुनता है तो वह मंत्रियों को भेजकर उस बुलबुल को अपने महल में कैद करवा लेता है| उस बुलबुल का गाना इतना मीठा और सुन्दर था कि हर कोई उसका दीवाना हो जाता था- "समुद्र के किनारे पर बगीचे के एक कोने में पेड़ था| उस पेड़ पर एक बुलबुल रहती थी| उसका गाना इतना मीठा था कि उसे सुनकर मल्लाह

जहाज चलाना रोक देते थे और घंटों उसका मीठा गाना सुना करते थे| उसके गाने में ऐसा असर था कि उसे सुनकर रोगी चंगे हो जाते थे|"[9]

राजा उसका गाना नित्य सुनता और बहुत खुश होता था| एक दिन जापान के एक राजा ने उनके महल में एक सोने की बुलबुल भेजी| वह सोने की बुलबुल बहुत खूबसूरत थी। उसमें एक 'कल' लगी थी जिसमें कूक भरने से वह बहुत ही सुन्दर गाती थी। उसकी बराबरी असली बुलबुल भी नहीं कर सकती थी| एक दिन दोनों बुलबुलों का साथ-साथ गाने के लिये मुकाबला हुआ और उस मुकाबले में सोने की बुलबुल बाजी मार ले गई| इससे दुखित होकर वह असली बुलबुल एक दिन मौका पाकर उड़ गई| सोने की बुलबुल का गाना सुनते-सुनते राजा ऊब गया| जब एक दिन उस सोने की बुलबुल की आवाज फटी-फटी आने लगी तब राजा ने उसे कई डॉक्टरों को दिखाया पर सबने यही कहा कि यह नकली बुलबुल है और अब जीवित नहीं हो सकती है| यह सुनकर राजा बहुत उदास हो गया और धीरे-धीरे राजा असली बुलबुल के वियोग में एकदम से बीमार पड़ गया| असली बुलबुल ने जब यह सुना कि हमारे गाने के अभाव में राजा अत्यंत बीमार हो गये हैं और मेरी प्रतीक्षा में हैं तो उससे रहा न गया- "एक दिन शाम को बादशाह चुपचाप लेटा था कि उसके कान में बहुत मीठी गाने की आवाज सुनाई पड़ी| उसने सिर उठाकर देखा कि सामने पेड़ पर वही बुलबुल गा रही है| राजा को देखकर उसने कहा कि आपके बीमार होने की खबर सुनकर मुझसे रहा न गया, चली आई|"[10]

राजा के द्वारा अपमानित होने के पश्चात भी जब असली बुलबुल ने यह जाना कि राजा मेरे गाने को सुनने के अभाव में एकदम से कमजोर और रोगग्रस्त हो गए हैं तो उसकी संवदेना जाग गई और न चाहते हुए भी उसके दिल में राजा के प्रति गहन संवेदना प्रस्फुटित हो गई| वह राजा के महल के सामने पेड़ पर बैठकर गाने लगती है| राजा जब उसका गाना सुनता है तो वह बहुत खुश होता है और बुलबुल से अपने महल में आने की अपील करता है परन्तु इस बार बुलबुल साफ मना करते हुए कहती है कि हे- राजन! जब तक आप ठीक नहीं हो जायेंगे, मैं रोज शाम को आकर आपको गाना सुना जाया करुँगी|

'विश्वास पर विश्वास' कहानी में रामसिंह पुलिस में होते हुए भी चोर नन्दू की पत्नी के प्रति अपनी संवेदना को रोक नहीं पाता है| चोरी का माल बरामद होने के पश्चात भी मैना के दुःख को देखकर वह उसे उसका पूरा सामान वापस कर देता है|

'मैं तुम्हारी आँखों को नहीं, तुम्हें चाहता हूँ' नामक कहानी में बंशी, रम्भा के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करने से खुद को नहीं रोक पाता है| एक हादसे में जब रम्भा की दोनों आँखें चली जाती हैं तो वह उसका एक मात्र सहारा बनता है और उसे आजीवन साथ देने का वादा करके उससे विवाह करता है| वह रम्भा से साफ-साफ कहता है कि रम्भा मैं तुम्हारी आँखों को नहीं, तुम्हें चाहता हूँ|

इस प्रकार से आचार्य जी की कहानियों में सूक्ष्म संवदेनाओं की अभिव्यक्ति हुई है| इन कहानियों को पाठक बड़ी लगन व तटस्थता के साथ पढ़ते हैं और उनमें वर्णित तथ्यों को आत्मसात करके अपने जीवन को सार्थक बनाने का प्रयास करते हैं| ये कहानियां हमारे जीवन को एक नया मोड़ देती हैं जिसके माध्यम से हम अपना और अपने समाज का निरंतर विकास कर सकते हैं|

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. 'शास्त्री', आचार्य चतुरसेन, सोया हुआ शहर (सुखदान), 2009, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 49
2. 'शास्त्री', आचार्य चतुरसेन, दस बाल कहानियां (बात का धनी), 2016, नई दिल्ली, इण्डियन बुक बैंक, पृष्ठ 75
3. 'शास्त्री', आचार्य चतुरसेन, सोया हुआ शहर (मास्टर साहब), 2009, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 217
4. 'शास्त्री', आचार्य चतुरसेन, दुखवा मैं कासे कहूँ (दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 12
5. 'शास्त्री', आचार्य चतुरसेन, दुखवा मैं कासे कहूँ (मूल्य), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 56
6. शर्मा, डॉ. रामसनेही लाल, चतुरसेन के कथा साहित्य में समाज, धर्म और नीति (सामाजिक पृष्ठभूमि), 2014, आगरा, निखिल पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृष्ठ 32
7. 'शास्त्री', आचार्य चतुरसेन, मेरी प्रिय कहानियां (अम्बपालिका), 2017, दिल्ली राजपाल एंड संज, पृष्ठ 10
8. 'शास्त्री', आचार्य चतुरसेन, दुखवा मैं कासे कहूँ (दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी), 2006, नई दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ 16
9. 'शास्त्री', आचार्य चतुरसेन, दस बाल कहानियां (बुलबुल की कहानी), 2016, नई दिल्ली, इण्डियन बुक बैंक, पृष्ठ 116

10. ‘शास्त्री’, आचार्य चतुरसेन, दस बाल कहानियां (बुलबुल की कहानी), 2016, नई दिल्ली, इण्डियन बुक बैंक, पृष्ठ 121